दूसरे अंत की तलाश

सुभाष चन्द्र

दूसरे अन्त की तलाश

विधायक घर के ठीक सामने, बामुश्किल पचास क़दम पर, सड़क के बाईं ओर लावारिश पड़ी लाश की चर्चा सुबह के अखबारों से पहले ज़्यादातर लोगों को कानोंकान मिल चुकी थी। मोबाइल और केबल क्रान्ति की उग्रता के बावजूद अब भी गाँवों से घिरे इस क़स्बे की आत्मा ज़िन्दा थी। गोया वह नवीन को आत्मसात् करते हुए पुरानी भावुकता से मुक्त न हो पाया हो या जी.टी. रोड के किनारे-किनारे पसरते जाने के बावजूद अभी तक गाँवों के बाज़ार से बड़ा क़द न बना पाया हो और मल्लिका शेरावत, बिपाशा जैसी अभिनेत्रियों के अर्धनग्न तस्वीरों की ख़ूबसूरती निहारने के बावजूद, अपने बदरंग अक्स को आँखों से हटा न पाया हो।

क़स्बे में महानगरों की तरह सिविल लाइन एरिया नहीं था और न सम्भ्रान्त घरों की कॉलोनियाँ। यानी क़स्बा अभी अपने-आप में खोया नहीं था। यहाँ हत्या, आत्महत्या या मौत को पचा पाने वाली आँतें भी विकसित नहीं हो पाई थीं। शायद इसलिए इस ख़बर की दौड़ तीव्र थी और आस-पास के गाँवों के इक्का-दुक्का पान, परचून की दुकानों तक जा पहुँची थी। हालाँकि गाँवों के कुछ घरों में अख़बारों के क्षेत्रीय संस्करण भी पहुँचने लगे थे, जिनमें बकरी के पाँच बच्चों के जनने से लेकर तांत्रिकों के चमत्कारों तक को स्थान मिला हुआ होता, फिर भी लावारिश लाश का आँखों देखा हाल जितनी सजीवता एवं संवेदना से गाँव के दुधिए सुना रहे थे, उतनी संवेदना से अख़बार नहीं। आँखों देखा हाल सुनाते समय दुधियों के चेहरों की बची-खुची चमक मलिन नज़र आती जैसे किन्हीं थकी आँखों से निहारी जा रही हो। वैसे भी अख़बारों में उस घटना ने एक दिन बाद स्थान पाया था जबकि क़स्बे से लौटकर गाँव आया हर शख़्स तब तक घटना के तह में जाने के लिए अपने-अपने मानसिक अस्त्र-शस्त्र से हड़प्पा जैसी ख़ुदाई कर चुका था।

एक दिन पहले सेंसेक्स छह हज़ार आठ सौ की रिकार्ड ऊँचाई को छू चुका था। समाचार-पत्रों ने इस उपलब्धि को प्रमुखता से छापा भी था। इसलिए क़स्बे